

B.A. Paper - III

Page No.:

Date: / /

Hindi (Hon) Paper - IV

1) रस की परिभाषा एवं अवयव
भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही रस पर चर्चा होती आ रही है। रस को काव्य की आत्मा माना गया है। इसके अभाव में हम काव्य की कल्पना नहीं कर सकते हैं।

रस का सर्वप्रथम उल्लेख भरत मुनि ने अपने ग्रंथ नाट्य शास्त्र में किया है। उन्होंने रस की परिभाषा निम्न रूप में की है -

“विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगद्वयसंनिधितिः” अर्थात् विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव के संयोग से रस की निधिति होती है।

रस के निम्नांकित चार अवयव माने जाते हैं -

(1) विभाव - जो व्यक्ति, पदार्थ अथवा वाह्य विकार अन्तः व्यक्ति के हृदय में भावोत्प्रेक करता है। उन कारणों को विभाव कहा जाता है। इन कारणों के भेद से विभाव के दो भेद हैं - (1) आलम्बन विभाव

149- १९५५ (१९५५) १९५५
और (11) उद्दीपन विभाव

(11) अनुभाव — आसंबन्ध और उद्दी-
पन विभावों के कारण उत्पन्न भावों
को बाहरी प्रकाशित करने वाले कार्य
अनुभाव कहलाते हैं। नायक के दर्शन
से नायिका का चयन होना अनु-
भाव है।

(11) व्यभिचारी या संचारी भाव-
व्यभिचारी या संचारी भाव स्थाई
भाव के साहायक हैं जो अनुकूल
परिस्थितियों में घटते-बढ़ते हैं।
इन भावों की संख्या 33 है।

(11) स्थाई भाव — मन का वि-
कार भाव है। भरत मुनि ने
अपने नाट्यशास्त्र में भावों की
संख्या अचास कही है जिनमें 33
संचारी, 8 सात्विक और शेष 8 स्थाई
हैं। भरत के अनुसार स्थाई भाव
हैं (1) रति (2) हास (3) शोक (4)
क्रोध (5) उत्साह (6) भय (7) जुगुप्सा
(8) विस्मय। भरत ने बाद में
राम या निर्वेद को भी नवम स्थाई
भाव माना। बाद के आचार्यों ने
भक्ति और वात्सल्य को भी
स्थाई भाव माना।